Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

लोक साहित्य में संगीत का स्थान

Samyak R. Parekh[1], Dr. Ashwini Kumar Singh[2], Prof. Gaurang Bhavsar[3]

1 Research Scholar, Faculty of Performing Arts, The Maharaja Siajirao University of Baroda, Barodra
2 Faculty of Performing Arts, The Maharaja Siajirao University of Baroda, Barodra
3 Faculty of Performing Arts, The Maharaja Siajirao University of Baroda, Barodra

शोध सार

प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से शोधार्थी ने लोक साहित्य में संगीत का स्थान विषय पर शोध के माध्यम से गीत के तीन मूल तत्त्वों के आधार पर गीत की सांगीतिक रचना कैसी होती है? इस विषय के बारे में बताने का प्रयास किया है। साथ ही साथ लोक साहित्य की विस्तृत व्याख्या, लोक साहित्य एवं परम्पराए, कंठ्य–परम्पराएं, गीत संरचना के तत्त्व, विविध लोकगीतों में संगीत का तत्त्व आदि विषयों की जानकारी देने का प्रयास शोध के माध्यम से किया है।

बीज शब्दः गुजरात, लोक साहित्य, संगीत।

भूमिका

लोक का जीवन लोक साहित्य में प्रतिबिंबित होता है। उसमें मानव मन के विविध भाव अभिव्यक्त करता है। इसमें जीवन के सब सुख–दुःख सम्मिलित होते हैं। इसलिए लोक साहित्य लोगों को आत्मीय लगता है। लोक उसे अपने हृदय में और कंठ्य में जिन्दा रखते है। लोक साहित्य सैंकड़ो वर्षो से लोगों के कंठ्य में जिंदा है और मौखिक परंपरा द्वारा चारों तरफ फैला हुआ है। ये हमेशा बोली जाने वाली जीवंत लोकबोली में ही होता है। लोकगीत गाने वाले और लोकवार्ता कहने वाले अपनी स्वयं की बोली प्रस्तुत करते हैं। उसमें लोकवार्ता के एक से अत्यधिक अथवा भिन्न–भिन्न पाठान्तरों में ग्रामवासी, कृषिकों, श्रमिकों, पशुपालकों तथा सामान्यजनों की मनोदशा और अवस्था का निरूपण होता है और ऐसा कंठस्थ साहित्य लोगों को आनन्द देता है। साथ ही कई बार परोक्ष रूप में कई बोध या सलाह भी देता है। इसलिए लोकजीवन में इसका अत्यधिक महत्व है। भले ही लोग निरक्षर हो, ज्यादातर लोग गावों में बसते हैं और जहाँ मनोरंजन के साधन उपलब्ध नहीं होते हैं, वहां कंठस्थ लोक साहित्य व्यापक रूप में प्रचलित है। उसमें भी ग्रामवासी स्त्रियों के कंठ्य से ज्यादातर लोक साहित्य लोरियां, शादी, गीत, रास–गरबा, व्रतगीत, राजिया, शोकगीत गाते हैं। भजन–दोहा, सोरठा, दन्तकथा, लोक वार्ता आदि पुरुष द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। महिलाएं ज्यादातर निरक्षर थी, फिर भी उनके पसंदीदा लोकगीत, लोक–कहानियां आदि सभी को वह कंठस्थ कर लेती है। इस तरह पीढ़ी–दर–पीढ़ी लोरियां, शादी, रास–गरबे, गरबी, व्रतगीत, राजिया–शोकगीत जिन्दा रहते हैं।

लोक साहित्य

लोक साहित्य, साहित्य का विशेष प्रकार है। सालों से लोगों के मुख से कही जाने वाली कथाएं, गीत या अन्य साहित्य की जो मौखिक परम्परा के रूप में जनता में प्रचलित है, उसे "लोक साहित्य" कहा जा सकता है। साहित्य के दो प्रकार है।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

१. कंठ्य साहित्य २. शिष्ट सहित्य

इन दोनों साहित्यों में लोक साहित्य अत्यधिक प्रचलित है। मानव समुह में और समाज में रहने लगा तथा उसका व्यवहार भाषा में चलने लगा तब से लोक साहित्य अस्तित्व में आया है। ज्यादातर प्राचीन लोक साहित्य नष्ट हो चुका है, फिर भी थोडा बहुत लोक साहित्य लोगों के कंठ्य में आजतक संभला है।

"सैंकड़ो वर्षों से यह साहित्य लोककंठ पर अधिकतर गाँव के लोगों में अभी भी स्थित है। ग्रामवासी, कुशकों, पशुपालकों और श्रमिकों के लोक साहित्य का ज्यादा प्रचार–प्रसार हुआ है। इनके जीवन की प्रत्येक अवस्था के साथ लोक साहित्य एक या दूसरे रूप से जुड़ा हुआ है और लोकजीवन के साथ जैसे मिल चुका है।[1]

समस्त भारत में और अन्य देशों में इस प्रकार का साहित्य देखने को मिलता है। परन्तु सैंकडों वर्षो से जीवंत और प्रचलित यह कंठ्य साहित्य का मध्यकाल में कई विद्वानों द्वारा सम्पादन हुआ है। लेकिन ग्रन्थ के रूप में उसका प्रकाशन हुआ हो, ऐसा देखने को नहीं मिलता है। उसके संपादन और प्रकाशन की प्रवृत्ति अर्वाचीनकाल से ही शुरू हुई है।

अंग्रेजी भाषा में लोकविधा के लिए 'फोकलोर' शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से होता है। इंग्लैंड के एक विद्वान विलियम जॉन थोमसन ने इ.स. १६४६ में 'फोकलोर' शब्द प्रचलित किया था। ये शब्द यूरोप, जर्मन, फ्रांस आदि भाषाओं में भी कंठस्थ साहित्य के लिए प्रयोग किया जाने लगा।[2] इस शब्द का अर्थ 'लोकज्ञान' होता है। परन्तु बाद में ये लोककथा के रूप में प्रचलित हुआ। डॉ. वार्डर के मत अनुसार "फोक" मतलब सभ्यता से दूर रहती कोई जाति का बोध'। "स्वतम" शब्द, "स्त" में से निकला है, जिसका अर्थ "सीखना" होता है। इस तरह से देखें तो 'फोकलोर" का अर्थ 'असंस्कृत लोगों का ज्ञान' होता है।[3] दूसरी तरह से देखें तो इस शब्द का अर्थ बहुत ही व्यापक है। "फोक" का मतलब 'लोग' और "स्वतम" का मतलब 'विध्या'। 'फोकलार' यानि कि लोगो में परंपरा द्वारा उतरी हुई सभी बातें। उसमें लोगों की कला कारीगरी, वस्त्राभूषण, भोजन की अन्य खाद्य वस्तुएं, घर और आँगन की सजावट, वनस्पति से प्राप्त होने वाली दवाइयाँ, लोगों की धार्मिक मान्यताएं और विधि–विधान, शगुन–अपशगुन के ख्याल, देव–देवी, भूत–प्रेत के ऊपर मान्यताएं, दंतकथाएं, टुच्के, कहानियाँ, कहावतें, लोकगीत ये सब आ जाते हैं।[4] इसलिए अंग्रेज विवेचकों ने केवल परंपरागत कंठ्य साहित्य के लिए एक नया शब्द बनाया "फोक लिट्रेचर'। ये शब्द अंग्रेजी में प्रसिद्ध हुआ और व्यापक रूप में उसका प्रचार–प्रसार भी हुआ। एक बात सोचने लायक यह है कि कंठ्य साहित्य को ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करने की प्रवृति का आरम्भ तो हुआ लेकिन उसके बाद उसका क्या नाम देना चाहिये? ये प्रश्न खड़ा हुआ। इंग्लैंड में पूर्व कंठस्थ साहित्य के लिए 'Popular Antiquity' शब्द का प्रयोग किया गया। उसमें लोगों के कंठ्य से प्रस्तुत किये जाने वाले प्राचीन किस्से, गीत, रासडा आदि का समावेश हुआ, लेकिन इस शब्द का प्रयोग लम्बा और कठिन होने के बावजूद संदिग्ध अर्थ होने के कारण प्रचार से निकल गया और इसकी जगह 'फोकलोर' शब्द का प्रयोग होने लगा।

लोक साहित्य में संगीत का स्थान

लोक साहित्य सैंकड़ो वर्षो से लोगों के कंठ्य में जिंदा है और मौखिक परंपरा द्वारा चारों तरफ फैला हुआ है। ये हमेशा बोली जाने वाली जीवंत लोकबोली में ही होता है। लोकगीत गाने वाले और लोकवार्ता कहने वाले अपनी स्वयं की बोली प्रस्तुत करते हैं। उसमें लोकवार्ता के एक से अत्यधिक अथवा भिन्न–भिन्न पाठान्तरों में ग्रामवासी,

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

कृषिकों, श्रमिकों, पशुपालकों तथा सामान्यजनों की मनोदशा का और अवस्था का निरूपण होता है और ऐसा कंठस्थ साहित्य लोगों को आनन्द देता है और कई बार परोक्ष रूप में कई बोध या सलाह भी देता है। इसलिए लोकजीवन में इसका अत्यधिक महत्व है।

लोक का जीवन लोक साहित्य में प्रतिबिंबित होता है। उसमें मानव मन के विविध भाव अभिव्यक्त करता है। इसमें जीवन के सब सुख–दुःख सम्मिलित होते हैं। इसलिए लोक साहित्य लोगों को आत्मीय लगता है। लोक उसे अपने हृदय में और कंठ्य में जिन्दा रखते है। भले ही लोग निरक्षर हो, ज्यादातर लोग गावों में बसते हैं और जहाँ मनोरंजन के साधन उपलब्ध नहीं होते हैं, वहां कंठस्थ लोक साहित्य व्यापक रूप में प्रचलित है। उसमें भी ग्रामवासी स्त्रियों के कंठ्य से ज्यादातर लोक साहित्य लोरियां, शादी, गीत, रास–गरबा, व्रतगीत, राजिया, शोकगीत गाते हैं। भजन–दोहा, सोरठा, दन्तकथा, लोक वार्ता आदि पुरुष द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। महिलाएं ज्यादातर निरक्षर थी, फिर भी उनके पसंदीदा लोकगीत, लोक–कहानियां आदि सभी को वह कंठस्थ कर लेती है। इस तरह पीढ़ी–दर–पीढ़ी लोरियां, शादी, रास–गरबे, गरबी, व्रतगीत, राजिया–शोकगीत जिन्दा रहते हैं। बहारवटिया की लोककथाएं और प्रेमीजनों की दुहाबद्ध लोक कथाएं मूलरूप से चारण समाज, बारोट समाज अथवा भाट आदि लोगों द्वारा रची हुई है, ऐसा जोग है। परन्तु लोगों द्वारा अपनाई गई होने के कारण इस कथा में ज्यादातर परिवर्तन हुए है। परिणामस्वरुप इन कथाओं में व्यक्ति विशेष का स्वरूप बदल जाता है और लोक समूह का सृजन बन गया है और लोक कंठ्य में आजतक टिका हुआ है।

लोकगीत की बात करे तो रणजीत राम महेता का कहना है कि "लोकगीत का उषःकाल साहित्य का उषःकाल है। "वस्तुतः साहित्य का उद्‌भव साहित्य से ही हुआ है और गीत का उद्‌भव लोकगीतों से हुआ है। सुरेश दलाल भी कहते हैं कि "गीत का गंगोत्री स्थान लोकगीत है। लोकगीत में कवितायें कम होती है, लेकिन उसका भाव होता है। स्वाभाविक और मार्मिक विधानों के बारे में ये सोचने की इच्छा होती है कि जिसे हम गीतकाव्य कहते हैं, उसके मूल लोकगीत में है।"[5]

आदिकाल से लोकजीवन की सरल और उर्मिल अभिव्यक्ति गीत के रूप से ही हुई होगी। उस सवेंदन का लोगों के पारिवारिक और वैयक्तित्व जीवन के साथ नाता होता है। गीत, लोकगीत का संस्कार पिंड लेकर ही भाषा का जन्म होता है, इस घटना का तर्क समाज में आता है। रणजीत राम कहते हैं कि शिक्षण विमुख स्त्री–पुरुष अपने हृदय में बसते भाव संगीत द्वारा प्रकट करते हैं। ऐसी निर्दोष गम्मतता वह अपने संजोग, खुद की खासियत की रूपरेखा बताते हैं। यह निर्दोष गम्मतता में से उत्पन्न हुए साहित्य को देसी साहित्य कह सकते हैं। उसके कई सारे भेद–प्रभेद है। आज का गीत वह बीते हुये कल के लोकगीत का नया स्वरूप है। लोकगीत अभिजात गीत के मूल में बसा जीवंत रसायण है। रमेश पारेख कहते हैं कि लोकगीत और अभिजात गीत भिन्न नहीं है, वह बीते कल का स्वरूप परिवर्तन हुआ है ऐसा कह सकते हैं। लोकगीत में लय, लोकभाषा, लोकजीवन की सामग्री की गीत–कविता नहीं है, परंतु गीत में उसका संवेध रूप प्रकट होता है वो अभिजात लोकगीत का संस्करण है।

गीत में एक उर्मी, भाव–संवेदना का कलात्मक आलेखन होता है। कोमल संवेदन की निरुपण रीत भी विशिष्ट है। नजाकत उसका एक महत्व का लक्षण है। उर्मी के जैसे विचार दृचिंतन से गीत की आबोहवा अभिव्यक्त होती है।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

गीत के प्रथम खंड में गीत का निखार आर्कषक होता है। गीतकार एक कुतुहल प्रकट करता है। दूसरे खंड में उद्दीप्त भाव का क्रमिक विकास होता है। मुख्य भाव को प्रकट करने की लयात्मक प्रयुक्ति का स्थान लेती है। गीत में मुख्य भाव ज्यादा से ज्यादा खुला होता है और अंत मे सचोट रूप में मूर्त होता है। भाव विकास पराकाष्ठा को पहुंचकर स्थिर संवेदना, संकल्पना के रूप में परिवर्तित होकर इसके माधुर्य को भुलाकर अंतर्मन की स्थिति में विलीन हो जाता है।

लय तत्व गीत का प्राण तत्व है। गीत में शब्द अर्थ के अंतर्गत संगीत का तत्व रहता है, यह स्वीकार्य है। लेकिन उसमें उसकी लयात्मकता का महत्व है। गीत में एक छोटा–सा संवेदन उद्घाटित होता है। एक भाव गीत के केंद्र में होता है। गीत में भाव–संवेदन का क्रमिक–अक्रमिक विकास होता है। यह भाव ज्यादा–से–ज्यादा खुलकर अंतरा द्वारा पराकाष्ठा तक पहुंचकर या परकाष्ठा से परिचय करते–करते उसके भीतरी सौंदर्य तक भाव को ले जाता है। ध्रुवपंक्ति गीत का केंद्र होती है। उस केंद्र से ही संवेदन के वलय की रचना होती है। अन्तरा और पूरक पंक्तियाँ वह भाव संवेदन के ही वलय है।

गीत रचना के मुख्य घटकों में ध्रुव पंक्ति, अंतरा, पुरक पंक्ति, प्रास, लय और विषय निरुपण होता है। गीत की प्रथम पंक्ति काव्य के चमकते शिखर का परिचय करवाती है। वह पंक्ति काव्य में वर्चस्व धारण करती है। गीत काव्य का केंद्र या ध्रुव पंक्ति गीत को ज्यादा खुला करती है और प्रभावशाली असर स्थापित करती है। गीत में जो मुख्य पंक्ति है उसका समग्र गीत में मानपान होता है। गीत की प्रत्येक कड़ी को ध्रुव पंक्ति का अनुसंधान रखना ही पडता है। ध्रुव पंक्ति को केंद्र में रखकर गीतकार अन्य पंक्तिओं को प्रकट करता है। गीत की नस–नस में ध्रुव पंक्ति का भाव होता है। ऐसा कह सकते हैं कि ध्रुव पंक्ति हृदय है, बाकी सभी कड़ियाँ गीत की काया है। अन्य पंक्तियां ध्रुवपद के अर्थ का अनुसंघटन है। गीत के समग्र विषय को ज्यादा से ज्यादा अर्थवाहक प्रस्तुत कर सके ऐसे छोटे–से–छोटे शब्दों की सृष्टि खड़ी करना ही गीत की सफलता का आधार है।

गीत में ध्रुवपद का महत्वपूर्ण स्थान होता है। गीत में ध्रुवपद की पंक्तियों का वैविध्य होता है। स्थायी पंक्ति मतलब गीत की प्रथम पंक्ति, और ध्रुवपद मतलब गीत का मुख्य पद। उसका स्थान समग्र पद में होता है। वह प्रारंभ में, मध्य में या अंत में कोइ भी जगह आ सकता है। ध्रुव पंक्ति के बाद काव्य को पुष्ट करने वाला एकम यानि की अन्तरा। गीत के केंद्र भाव को पुष्ट करने की योजना गीत के स्वरूप में होती है, उसको अन्तरा कहते हैं। ध्रुव पंक्ति लय और प्रासको लेकर अन्तरे के बाद आती पंक्ति को पूरक पंक्ति या समांतर पंक्ति कहते हैं। उसमें से गीत के एक खंड को पूर्णता प्राप्त होती है। पंक्ति के अंत में आता वर्ण दूसरी पंक्ति के वर्ण के साथ ध्वनि साम्यता साधते हुये अन्तानुप्रास बनता है। प्रास का मुख्य काम इस तरह से संधि आवर्तन के सातत्य के बाद चरण के अंत को व्यक्त करता है।

गीत का शब्द उदगार नहीं है, लेकिन उद्गान है। भाव की नादात्मकता, व्यंजनात्मकता, अभिव्यक्ति है। वो शब्द की भीतर लय और ताल का प्रवाह है। गीत में लय के तत्त्व के नियंत्रण के पीछे शब्द आता है। उससे पंक्ति के चरण और समग्र गीत का स्वरूप बंधता है। लय का विचार गीत के केंद्र में रहता है। कविता की तरह गीतकाव्य में भी रस साधक भाषा स्तर होता है।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

गीत रचना में संरचना और अभिव्यक्ति की दृष्टि जो मुख्य प्रवर्तक राग या उसकी अंतर्गत लय महत्व की भूमिका में है। कई जानें–मानें गीत में लोकसंगीत का आधार है। उसमें देसी रीत से पहचान वाली रचनाएं पिंगल के अधिकार में मात्रामेल–लय ढूंढ सकते हैं। गुजराती लोकगीतों की कई रचनायें स्पष्ट रूप से मात्रा में, लय में बंधी हुई दिखाई देती है तथा राग–रागिनीयों के साथ जुड़ी होती है। उसके बावजूद लोकगीत की गेय रचना ही राग है ऐसा समीकरण बन रहा है।

परम्परागत लोकगीत उच्च प्रकार के संगीत के साथ जुड़े हैं। एक रीत से लोक व्यवहार में मिश्र हो चुका लोकगीत उसके प्रयोगों में ही सही रीत से प्रकट होता है। उसकी तरह अलग महक और संगीतात्मक उपज ध्रुव पंक्ति में गजब का माधुर्य भरती है। राग या लय में जो एकम परिवर्तन होता है या फिर उसमें जो पंक्ति का स्वीकार होता है, वो गीत की अभिव्यक्ति पर सीधा प्रभाव डालती है।

प्रत्येक शब्द का अपना सुक्ष्मतम संगीत होता है। यह संगीत अपूर्व लय से ही जन्म लेता है। कवि–प्रतिभा से उद्‌भवित शब्द माधुर्य, प्रसाद और ओजस गुण भले ही धारण किया हो लेकिन वो जब लय के साथ जुड़ जाता है तब वह उद्‌गार से उद्‌गान बन जाता है। नाद सौंदर्य की महिमा बनता है। डॉ. हरी वल्लभ भायाणी लय का प्रचलित विभाव अपने यहाँ "रीधम" शब्द से आया हुआ मानते है।

राग के कारण शब्द या वर्ण माधुर्य जन्म लेता है। कई बार काव्य का अर्थ समझ में ना आने पर श्रोता उसके गान मात्र से मुग्ध हो जाते हैं। वह राग की महिमा, राग के प्रभाव के कारण, पंक्तियों के सरल भाव से कंठित हो जाती है। कई बार कई गीत कवि लोकगीत और मध्यकालीन पदों के भावों को अपने सामने रखकर रचना करते हैं। इस तरह लय, राग और रस इन तीनों का मूल संगीत के साथ जुड़ा है। लेकिन गीत में उसके तत्व अन्तर्निहित है, ये उसका महत्व बताता है।

सुंदरम के मतानुसार गीत, कविता और संगीत एक–साथ विकास की ओर जाता पौधा है। वो मानते हैं कि संगीत की प्रभावकता जब गीत में बढ़ जाती है, तब गीत की प्रभावकता कम होती है, और उसकी जगह पर शुद्ध संगीत हाथ पर आता है। गीत में निम्नलिखित तत्व होते हैं।

(1) गीत के अपने मूल तत्व।

(2) संगीत के मूल तत्व।

(3) कविता के मूल तत्व।

यह तीन मूल तत्वों के मिश्रण से जो रचना बनती है, तब उत्तम अभिजात गीत का उद्‌भव होता है। गीतकार को गीत के स्वरूप की जानकारी और संगीत की समझ होनी जरूरी है। केवल संगीत में काव्य तत्व या गीत तत्व ना होने पर भी गीत टिक जाता है। जिन्हें गा सकते हैं वो गीत कहलाते हैं। ऐसा प्राचीन गीतलक्षण में देखने को मिलता है। हमारे लग्नगीत, श्रमजीवियों के गीत, ऋतुगीत, युद्धगीत मीठे–हलक से गाने और सुनने को मिलते हैं। ऐसे राग–स्वर की असर प्रभावक होती है।

संदर्भ

1 जादव, जोरावर. सिहं. (1991). लोक गुर्जरी. वार्षिक अंक दृ 7, गुजरात साहित्य अकादमी, गांधीनगर, पृ. ४०

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

2 परीख, प्रियकांत. (1991) गुजराती लोक साहित्य, प्रथम आवृति, गु.सा. अकादमी, गांधीनगर, पृ. ०१
3 जादव, जोरावर. सिंह. (1970). मरदाई माथा साटे. प्रवेशक, पृ. ४०
4 जानी, कनुभाई. (1992). लोक–वांगमय–विभावना और वर्गीकरण. नहेरु चेर, सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट, पृ०२
5 ब्रह्मभट्ट, भगीरथ (2002) गुजराती गीत स्वरूप विचार. आर.आर.शेठ–को.प्रा.लिमिटेड, अहमदाबाद, पृ. ७५

संदर्भ ग्रंथ सूची

जादव, जोरावर. सिहं. (1991). लोक गुर्जरी. वार्षिक अंक 7, गुजरात साहित्य अकादमी, गांधीनगर.
जादव, जोरावर. सिंह. (1970). मरदाई माथा साटे. प्रवेशक
जानी, कनुभाई. (1992). लोक–वांगमय–विभावना और वर्गीकरण. नहेरु चेर, सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट.
परीख, प्रियकांत. (1991). गुजराती लोक साहित्य. प्रथम आवृति, गु.सा. अकादमी, गांधीनगर.
ब्रह्मभट्ट, भगीरथ. (2002). गुजराती गीत स्वरूप विचार. आर.आर.सेठ को. प्रा.लिमिटेड, अहमदाबाद.
याज्ञिक, हसु. (2004). लोक विद्या परिचय. गुजरात विश्व कोष ट्रस्ट, अहमदाबाद.
Islam, M. (1992). Folklore & The pulse of the people. New Delhi.